भारत और श्रीलंका संबंध का ऐतिहासिक विश्लेषण

अवधेश कुमार
शोध छात्र
इतिहास विभाग
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सार–संक्षेप :

भारत एक अति प्राचीन देश है। चूँकि भारत को ब्रिटिश उपनिवेशवाद से अपने को आजाद कराना पड़ा था और वह साम्राज्यवादी शोषण का शिकार रह चुका था, अतः इस लम्बी दासता के कटु अनुभवों ने भारत को उपनिवेशवादी नीति का घोर विरोधी बना दिया। भारत की नीति विश्व राजनीति में एक सहयोगी देश के रूप में बने रहने की है न की दूसरों को आक्रांत करने की। उसने अपनी यह इच्छा पंचशील के सिद्धान्तों पर सहमति की स्थायी लगा देने के साथ ही साबित कर दिया है। तथा संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों का सम्मान करता है। भारत राजनीतिक रूप से तटस्थ नीति का अनुयायी है और नैतिक तौर पर किसी तरह भी युद्ध की भर्त्सना करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का पक्षधर है। भारत सरकार ने भारतीय जनता की भावनाओं के अनुरूप श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की समस्या समाधान हेतु, स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही प्रयास प्रारम्भ कर दिया थे। भारत सरकार के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के बीच समय–समय पर अनेक समझौते सम्पन्न हो चुके हैं। भारत एवं श्रीलंका के बीच हुये इन समझौतों के कारण नागरिकता की समस्या का समाधान करने में दोनों देशों को काफी कुछ सीमा तक सफलता मिली है, लेकिन फिर भी इस समस्या का पूर्णरूप से समाधान सम्भव नहीं हो सका है तथा आज भी नागरिकता की समस्या भारत–श्रीलंका समबन्धों में अपना अस्तित्व बनाये हुये है।

कुंजी : *नागरिकता, उपनिवेशवाद, शांतिपूर्ण समाधान, तटस्थ नीति, साम्राज्यवादी, पंचशील*

भूमिका

ऐतिहासिक रूप में भारत एक अति प्राचीन देश है। चूँकि भारत को ब्रिटिश उपनिवेशवाद से अपने को आजाद कराना पड़ा था और वह साम्राज्यवादी शोषण का शिकार रह चुका था, अतः इस लम्बी दासता के कटु अनुभवों ने भारत को उपनिवेशवादी नीति का घोर विरोधी बना दिया। पराधीन रहने का तीक्ष्ण अनुभव भारत को दूसरे देश को गुलाम रहने की सीख नहीं देता। सच तो यह है कि विश्व में जहाँ कहीं भी साम्राज्यवाद है, उसको समूल नष्ट करना भारत की नीति विश्व राजनीति में एक सहयोगी देश के रूप में बने रहने की है न की दूसरों को आक्रांत करने की। उसने अपनी यह इच्छा पंचशील के सिद्धान्तों पर सहमति की स्थायी लगा देने के साथ ही साबित कर दिया है। परस्पर लाभ, समानता का व्यवहार, एक दूसरे की सम्प्रभूता का सम्मान तथा शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व भारतीय नीति के प्रमुख तत्व हैं। पंचशील पर आधारित भारत का यह जीवन दर्शन दूसरे देशों को यह आश्वस्त करता है कि भारत किसी क्षेत्रीय सैनिक संघ का समर्थक नहीं है तथा संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों का सम्मान करता है। भारत राजनीतिक रूप से तटस्थ नीति का अनुयायी है और नैतिक तौर पर किसी तरह भी युद्ध की भर्त्सना करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का पक्षधर है।

श्रीलंका को हिन्द महासागर स्थित एक बड़े द्वीप के रूप में अपनी रणनीतिक स्थिति का पूर्ण आभास है। श्रीलंका के प्रथम प्रधानमंत्री श्री सेनानायके का यह विश्वास था कि नवोदित विकासशील देशों के लिए साम्यवाद एक गम्भीर संकट हो सकता है। अतः उन्होंने श्रीलंका को तटस्थ रहने और शान्ति में विश्वास रखने का मूल मंत्र दिया। सन् 1948 ई0 में श्रीलंका ने अपनी सुरक्षा हेतु ब्रिटेन के साथ एक सुरक्षा सन्धि पर हस्ताक्षर किया, क्योंकि वह अपनी सुरक्षा सम्बन्धी सीमित संसाधनों को देखते हुए इस तथ्य को भलीभाँति जानता था कि वह स्वयं अपनी अखण्डता एवं सुरक्षा अक्षुण्ण नहीं रख सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत–श्रीलंका सम्बन्धों को भारतीय तमिलों की नागरिकता की समस्या ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही श्रीलंका सरकार ने उन लगभग दस लाख तमिलों की नागरिकता समाप्त कर दी थी जो ब्रिटिश शासन काल में बगान के श्रमिक के रूप में श्रीलंका गये थे तथा लगभग 100 वर्षों से वहीं के निवासी के रूप में रह रहे थे। श्रीलंका में भारतीय मूल के व्यक्तियों के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगने के कारण भारतीय जनमानस ने श्रीलंका की इस प्रकार की नीतियों का विरोध किया तथा भारत सरकार पर दबाव डाला कि वह श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों के अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रयास करें। भारत सरकार ने भारतीय जनता की भावनाओं के अनुरूप श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की समस्या समाधान हेतु, स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही प्रयास प्रारम्भ कर दिया थे। भारत सरकार के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप श्रीलंका में बसे भारतीय मूल के व्यक्तियों की नागरिकता के सन्दर्भ में भारत एवं श्रीलंका के बीच समय–समय पर अनेक समझौते सम्पन्न हो चुके हैं। भारत एवं श्रीलंका के बीच हुये इन समझौतों के कारण नागरिकता की समस्या का समाधान करने में दोनों देशों को काफी कुछ सीमा तक सफलता मिली है, लेकिन फिर भी इस समस्या का पूर्णरूप से समाधान सम्भव नहीं हो सका है तथा आज भी नागरिकता की समस्या भारत–श्रीलंका समबन्धों में अपना अस्तित्व बनाये हुये है।

भारत एवं श्रीलंका सरकार के बीच सर्वप्रथम 1954 में नागरिकता की समस्या के समाधान हेतु प्रयास किया गया था। इस समझौते को नेहरू कोटलेवाला समझौता की संज्ञा दी गयी। इस समझौते द्वारा जहाँ दोनों देशों में नागरिकता की समस्या का निदान करने के लिए सर्वप्रथम महत्वपूर्ण प्रयास किया था, वहीं प्रथक मतदाता रजिस्टर एवं प्रवासी भारतीयों के पंजीकरण सम्बन्धी तथ्यों ने इस समझौते की सफलता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया था। श्रीलंका सरकार ने बहुत कम मात्रा में नागरिकता प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों के आवेदन–पत्र स्वीकृत किये थे, जिसके कारण नागरिकता की समस्या निदान सम्भव नहीं हो पाया था। श्री सोलोमन भण्डारनायके गुटनिरपेक्षता नेहरू नीति के अधिक निकट थे। उन्होंने श्रीलंका स्थित ब्रिटिश सैनिक अड्डों को समाप्त करवाया और पूर्व–पश्चित के सैन्य ध्रुवीकरण से स्वयं को पृथक रखा। सन् 1959 ई0 में उनकी हत्या के पश्चात् उनकी पत्नी श्रीमती सिरिमाओ भण्डारनायके प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुई। भण्डारनायके परिवार के शासनकाल में भारत–श्रीलंका सम्बन्ध में तनाव और सहृदयता के तत्व मिले–जुले रूप में दृष्टिगत होते रहे हैं।

अक्टूबर 1964 में श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती भंडारनायके एवं भारत के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुकर शास्त्री के मध्य नागरिकता की समस्या के समाधान हेतु एक महत्वपूर्ण समझौता सम्पन्न हुआ। यह समझौता दोनों देशों द्वारा नागरिकता के सन्दर्भ में किये गये प्रयासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास था। इस समझौते में दोनों देशों ने परस्पर लेनदेन की नीति का अनुसरण करते हुए समस्या समाधान का प्रयास किया था। श्रीलंका के सीलोंन मजदूर कॉग्रेस एवं भारत के तमिलनाडु क्षेत्र के व्यक्तियों एवं विपक्षी दल के नेताओं द्वारा इस समझौते का विरोध किया गया था, लेकिन वास्तव में इसी समझौते के आधार पर नागरिकता की समस्या का समाधान करने में आशिक सफलता प्राप्त हुयी है। श्रीमती इन्दिरागाँधी ने अपने शासन में इस समझौते के पूर्ण क्रियान्वयन का प्रयास किया तथा 1974 में बचे हुये 1,50,000 व्यक्तियों के सम्बन्ध में निर्णय लिया। 30 अक्टूबर 1981 को इस समझौते की अवधि समाप्त हो गयी थी, लेकिन फिर भी नागरिकता की समस्या का समाधान पूर्ण रूप से सम्भव नहीं हो पाया था, क्योंकि श्रीलंका एक निश्चित मात्रा से अधिक व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान नहं करना चाहता था तथा भारत ने जितनी संख्या में व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने की सहमति प्रकट की थी, उतने व्यक्ति भारत नहीं आना चाहते थे। 1981 तक 2,80,000 व्यक्ति भारत प्रत्यावर्तित हो चुके थे तथा 1,60,000 व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्राप्त हो चुकी थी। 1981 में इस समझौते की अवधि समाप्त होने पर भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा कि ''भारत उन व्यक्तियों के भारत प्रत्यावर्तन के लिये सहमत नहीं होगा जो भारत वापस नहीं आना चाहते तथा अब और शास्त्री–सिरामाओं समझौते की अवधि बढ़ाने का कोई तर्क सम्मत आधार नहीं है।'' श्रीलंका के विदेश मंत्री भारत सरकार के इस तर्क से सहमत नही थे कि अब दोनों देशों के मध्य शास्त्री–सिरामाओं समझौता लागू नहीं होगा। उनका विचार था कि ''जब तक नागरिकता की समस्या पूर्ण रूप से सुलझ नहीं जाती तब तक दोनों देशों के बीच शास्त्री–सिरामाओं समझौता प्रभावी रहेगा।''

अस्सी के दशक से ही श्रीलंका के अल्पसंख्यक तमिलों में अलगाववाद के लक्षण स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आने लगे थे। श्रीलंका के सिंहली शासन से क्षुब्ध होकर ये अल्पसंख्यक तमिल पूर्वोत्तर क्षेत्र में अपना एक स्वतंत्र ईलम बनाने का सपना तो बहुत लम्बे समय से देखते आ रहे थे, लेकिन उस सपने को वास्तविकता के समीप पहुँचाने की आहत पिछले कुछ वर्षों से ही सुनायी पड़ने लगी है। इस आहट की गूँज सिंहली–तमिल संघर्ष के धमालों में सबसे पहले सुनायी पड़ी थी।

श्रीलंका की सरकार ने हिंसा की राजनीति का अनुसरण करते हुये ईलम की माँग कर रहे तमिलों का 1980 में व्यापक रूप से दमन एवं नरसंहार किया था। श्रीलंका सरकार के दमन तंत्र के अतिरिक्त सिंहली उग्रवाद संगठन जनता विभुक्ति पेरूनुमा भी तमिलों पर कहर बन कर टूट पड़ा था। अलगाव वादी तमिलों ने हिंसा का रास्ता तो पकड़ा, लेकिन प्रारम्भ में उन्हें काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ा था। श्रीलंका सरकार एवं जे0 वी0 पी0 की हिंसात्मक गतिविधियों के कारण अनेक उग्रवादी तमिल संगठनों ने जन्म लिया, धीरे–धीरे ये संगठित होते गये तथा इन्होंने भी सरकार एवं जे0 वी0 पी0 के विरूद्ध हिंसा की राजनीति को अपना लिया। श्रीलंका सरकार का आरोप रहा है कि भारत सरकार ने इस तमिल उग्रवादी संगठनों को गठित करने एवं उनकी ताकत में वृद्धि करने में सक्रिय योगदान दिया है। श्रीलंका की सेना एवं सिंहली उग्रवादी संगठनों द्वारा तमिलों की आतंकवादी गतिविधियों का दमन करने के लिये अनेक प्रकार की दमनात्मक नीतियाँ अपनायी, जिसका सामना अनेक निर्देष तमिलों को करना पड़ा। श्रीलंका के तमिलों से सहानुभूति के कारण भारत के तमिलनाडु क्षेत्र के व्यक्ति भारत सरकार से श्रीलंका में तमिलों पर हो रहे अत्याचार के सन्दर्भ में हस्तक्षेप की माँग करने लगे तथा श्रीलंका में होने वाली आतंकवादी गतिविधियों के कारण भारी मात्रा में तमिल शरणार्थि भारत आने लगे। श्रीलंका में तमिलों पर होने वाले अत्याचारों एवं काफी मात्रा में शरणार्थियों के भारत आने पर 1980 में पहलीबार भारत सरकार ने श्रीलंका में इस सन्दर्भ में हस्तक्षेप किया तथा अपने विदेशमंत्री को स्थिति का अवलोकन करने के लिये श्रीलंका भेजा तथा तमिलों के लिये राहत सामग्री श्रीलंका सरकार की अनुमति से भेजी। भारत सरकार ने सदैव श्रीलंका सरकार से यह आग्रह किया कि वह हिंसा की राजनीति का त्याग करके समस्या का राजनैतिक समाधान करने का प्रयास करे, लेकिन विडम्बना यह रही कि जयवर्धने सरकार ने तमिल समस्या को कभी भी राजनैतिक समस्या नहीं माना तथा इस समस्या का सैनिक समाधान ही करने का प्रयास किया। भारत सरकार की तमिलों के प्रति सहानुभूति के कारण तथा तमिलों की आतंकवादी गतिविधियों में अधिकाधिक वृद्धि के कारण श्रीलंका सरकार भारत पर तमिलों को सहायता देने का आरोप लगाती रही, जिससे दोनों देशों के मध्य मतभेद बढ़ते ही गये। तमिलों एवं सिंहलियों के बीच होने वाली आतंकवादी गतिविधियों के कारण भारतीय नागरिकता प्राप्त व्यक्तियों का भारत प्रत्यावर्तन लगभग रूका ही रहा तथा इसी समय से भारत श्रीलंका के बीच स्वतंत्रता प्राप्ति से चली आ रही नागरिकता की समस्या के स्थान पर तमिल अल्पसंख्यक की समस्या ने दोनों देशों के सम्बन्धों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था।

1984 में श्री राजीव गाँधी ने भारत के प्रधानमंत्री पद को ग्रहण करने के बाद तमिल अल्पसंख्यकों की समस्या समाधान हेतु लचीलेपन एवं मृदुनीति का अनुसरण किया। राजीव गाँधी सरकार ने जहाँ एक ओर श्रीलंका सरकार को अगाह कि भारत किसी भी प्रकार की हिंसा का

विरोधी है, वहीं दूसरी ओर तमिल उग्रवादी संगठनों पर श्रीलंका सरकार द्वारा समस्या समाधान के सन्दर्भ में किये गये प्रयासों को मानने के लिये दबाव डाला। श्री राजीव गाँधी ने अपने शासन काल में एक बार फिर नागरिकता की समस्या का समाधान पूर्ण रूप करने क प्रयास किया। जनवरी 1986 में दोनों देशों ने पारस्परिक सहमति के आधार पर यह निर्णय लिया कि भारत उन सभी व्यक्तियों को ले लेगा, जिन्होंने 30 अक्टूबर 1981 के पूर्व भारत की नागरिकता प्राप्त करने के लिए प्रतिवेदन दिया है, लेकिन सिंहली एवं तमिलों के बीच होने वाली हिंसात्मक गतिविधियों के कारण वे भारत नहीं आ सके हैं इसके साथ ही श्रीलंका ने नागरिकता विहीन व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने की सहमति प्रकट की।

शास्त्री सिरामाओं समझौते के अन्तर्गत भारत ने छः लाख भारतीय मूल के व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में स्वीकृति दी थी। श्रीलंका ने 3 लाख 74 हजार व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में निर्णय लिया था। 1986 में श्रीलंका सरकार ने बचे हुए 94,000 व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करने के सन्दर्भ में स्वीकृति दी थी, जिसके परिणामस्वरूप श्रीलंका को 4 लाख 69 हजार व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान करनी थी। भारत की नागरिकता प्राप्ति हेतु जिन 5 लाख 6 हजार व्यक्तियों ने आवेदन किया था, उनमें से चार लाख व्यक्तियों को भारत की नागरिकता प्रदान की गयी थी तथा एक लाख व्यक्तियों के आवेदन–पत्र अनेक त्रुटियों के कारण निरस्त कर दिये गये थे। भारत में जिन 4 लाख व्यक्तियों को नागरिकता प्रदान की थी उनमें से तीन लाख सोलह हजार व्यक्ति 1983 से पूर्व भारत आ चुके थे, बचे हुए 84,000 व्यक्तियों का भारत प्रत्यावर्तन सिंहलियों एवं तमिलों के बीच होने वाले दंगों के कारण रूका रहा, इन 84,000 व्यक्तियों की संख्या अब बढ़कर लगभग एक लाख हो गयी है तथा इनमें से अधिकांश व्यक्ति परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण अब भारत वापस नहीं आना चाहते हैं। 1988 के अन्त तक श्रीलंका सरकार ने नागरिकता नियम के अन्तर्गत 4,35,000 व्यक्तियों को श्रीलंका की नागरिकता प्रदान कर दी थी। लेकिन दोनों देशों के इन प्रयासों के बाद भी नागरिकता की समस्या का निदान सम्भव नहीं हो सका है। लगभग एक लाख व्यक्तियों की नागरिकता की समस्या दोनों देशों के सम्बन्धों में आज भी विधमान है।

वर्तमान समय में भारत एवं श्रीलंका के बीच तमिल अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित समस्या अपने विकृत रूप में विद्यमान है। तमिल उग्रवादी संगठनों की आतंकवादी गतिविधियों एवं श्रीलंका सरकार के दमनतंत्र की परिणामस्वरूप श्रीलंका में साधारण तमिलों को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है, इसी कारण भारत सरकार की सदैव यह कोशिश रही है कि तमिल उग्रवादी संगठन एवं श्रीलंका सरकार के बीच कोई समझौता हो जाये जिससे श्रीलंका में शान्ति एवं व्यवस्था कायम हो सके तथा निर्दोष तमिलों को इस प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाहीं का सामना न करना पड़े। भारत सरकार के इन्हीं प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत एवं श्रीलंका के बीच एक शान्ति समझौता 29 जुलाई 1987 को सम्पन्न हुआ था, लेकिन फिर भी इस दिशा में कोई सार्थक प्रयास सम्भव नहीं हो सका है एवं समस्या अपने उसी रूप में विद्यमान है।

यद्यपि इसी बीच ऐसे कई अवसर आये हैं, जब भारत ने श्रीलंका के हित में और श्रीलंका ने भरतीय हित में काम किया है। यथा, 1971 में श्रीलंकाई निवेदन पर भारत ने उसे वहाँ की संगतिपूर्ण स्थिति से निबटने के लिए सैनिक सहायता प्रदान किया तथा 1962 के भारत–चीन युद्ध के बाद वहाँ की प्रधानमंत्री श्रीमती भण्डारनायके द्वारा दोनों देशों के मध्य शान्ति बहाल रखने के लिए कोलम्बो फार्मूला को प्रस्तावित किया। भारत–श्रीलंका सम्बन्ध 1983 के जातीय दंगों के बाद सबसे कठिन दौर में प्रवेश करता है, क्योंकि भारत हमेशा सैन्य शक्ति का घौंस दिखाकर तमिलों को राहत सामग्री अथवा अन्य सामानों की आपूर्ति करना नहीं चाहता था। विश्व पटल पर भारत की पहचान एक उदारवादी प्रजातांत्रिक राष्ट्र के रूप में है, न कि एक ऐसे आक्रांता के रूपमें, जो विश्व महाशक्तियों के साथ चीन की तरह सामरिक प्रतिस्पर्धा की होड़ संलिप्त है।

इसके सम्बन्ध रूस और अमेरिका दोनों के साथ ही मधुर बने हुए हैं। कुछ तनाव और कुण्ठा के बावजूद भारत अमेरिका की रिश्तों में स्थिरता के तत्व विद्यमान हैं। यही कारण है कि जब तमिल पृथकतावादियों से निबटने में श्रीलंका असमर्थ रहा, तब श्रीलंकाई राष्ट्रपति जयवर्द्धने ने अमेरिकी सरकार से सैनिक सहायता की गुहार लगाई। तब अमेरिका ने स्पष्टतः यह घोषित कर दिया कि भारत ही उस क्षेत्र में प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा का अभिभावक है। व्यवहारतः भारतीय सुरक्षा कार्यक्रम किसी भी पड़ोसी देश को भयभीत करने के लिए नहीं है। हाँ, पाकिस्तान एवं चीन इसके अपवाद अवश्य हैं। भारतीय नीति निर्धारकों की अदूरदर्शिता ही भारत के साथ उसके पड़ोसी राष्ट्रों के रिश्तों को प्रभावित करता रहा है, क्योंकि ऐसी बहुत ही कम विदेश नीतियां होती हैं जिसके निर्माण में विदेश मंत्रालय, प्रतिरक्षा मंत्रालय एवं वाणिज्य तथा वित्त मंत्रालय का समन्वित प्रयास शामिल होता है। श्रीलंका मामले पर भी भारत को नौकरशाही और राजनीतिज्ञ दोनों मोर्चों पर हमेशा मुँह की खानी पड़ी और 1983 के बाद श्रीलंका में उग्र रूप से निरन्तर जारी जातीय हिंसा के समन हेतु सार्थक प्रयास चार वर्ष उपरांत 1987 में भारतीय प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा ही किया जा सका। इसके फलस्वरूप भारत–श्रीलंका एक ऐसे समझौते पर सहमत हुए जो दोनों सरकारों को स्वीकार्य था।

प्रारम्भ में भारत सरकार ने तमिल समस्या के समाधान हेतु अतिवादी गुटों को नजरअंदाज कर टुल्फ को ही समर्थन दिया, ताकि श्रीलंका सरकार और तमिलों के मध्य जातीय समस्या का कोई सर्वमान्य हल निकल सके। लिट्टे नेता प्रभाकरन ने इस सन्दर्भ में कहा भी था कि – ''यदि भारत सरकार इस मुद्दे पर वाकई मध्यस्थ थी तो उसे याद रखना चाहिए कि अतिवादियों के साथ अपराधी की तरह व्यवहार किया गया – जयवर्द्धने का रेट कार्पेट स्वागत किया गया। यह सद्भाव का संकेत नहीं है।'' धीरे–धीरे भारत सरकार को यह विश्वास होने लगा कि अतिवादियों के और विशेषकरश लिट्टे के सहयोग के बिना इस समस्या का कोई समाधान सम्भव नहीं हो सकता। अतः भारत सरकार ने अपने पूर्व की मुद्रा का परित्याग कर तमिल अतिवादी गुटों को भी श्रीलंका सरकार के साथ वार्ता हेतु आमंत्रित किया। प्रत्युत्तर में तमिल पृथकतवादी गुटों ने भी श्रीलंकाई राष्ट्रपति अथवा उनके किसी सहयोगी से तमिल ईलम की आरक्षित माँग की शर्त पर मिलने का आश्वासन दिया। विभिन्न अतिवादी गुटों द्वारा इस समस्या का समाधान हेतु भारत सरकार को सार्थक भूमिका निभाने के लिए बहुत सारे प्रस्ताव और

सुझाव दिये गये, किन्तु भारत ने इनमें से किसी का भी अनुसरण नहीं किया। ये सुझाव थे – सैनिक हस्तक्षेप, साइप्रस टाईप समाधान और अंतर्राष्ट्रीय मंच द्वारा समाधान। तमिल ईलम की माँग पर आ टिकी श्रीलंका की जातीय समस्या के समाधान के सन्दर्भ में इन सुझावों का अनुपालन न तो भारतीय हित में था, न तमिल हित में और न हीं श्रीलंकाई हित में। श्रीलंका में जारी तमिल आन्दोलन एक प्रजातांत्रिक ढंग से निर्वाचित जनप्रिय सरकार के विरूद्ध था तथा तमिल अतिवादी और अन्य, भाषायी आधार एक राष्ट्र के विभाजन की माँग कर रहे थे, इसलिए श्रीलंका और बांगलादेश की स्थिति में कहीं कोई साम्य ही नहीं था। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि पूर्वी बंगाल से पलायन कर भारत आये शरणार्थियों की संख्या एक करोड़ से उपर थी। इसका भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा था। साथ ही साथ ये बांगलादेशी शरणार्थी असम, पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा की कानून व्यवस्था के लिए नित्य नई परेशानियां खड़ी कर रहे थे, जबकि भारत आये श्रीलंकाई शरणार्थियों की संख्या इनकी अपेक्षा काफी कम थी और वे अप्रवासी भारतीय थे। इसलिए बंगलादेश की तरह श्रीलंका में सैनिक कार्यवाहीं का कोई समुचित आधार ही नहीं था।

अगर यह मान भी लिया जाए कि भारत श्रीलंका में सैनिक हस्तक्षेप करता तो इससे श्रीलंकाई तमिलों की स्थिति और भी विकट हो जाती, क्योंकि इससे सम्बन्धित कुछ ऐसे प्रश्न थे जिनका समाधान भविष्य के गर्भ में था, यथा – क्या भारतीय सेना सम्पूर्ण श्रीलंका में सैनिक अभियान करती अथवा मात्र तमिल होमलैण्ड को अधिकृत करने के लिए सैनिक अभियान चलाती; यहाँ सबसे बड़ी समस्या तमिल होमलैण्ड की परिभाषा को लेकर था, क्योंकि वह कौन–सी काल्पनिक सीमा थी जहां तमिल होमलैण्ड की सीमा पूर्ण होती थी। इसके अतिरिक्त भारतीय चिन्ता का महत्वपूर्ण विषय दस लाख से ऊपर की आबादी वाले वे तमिल थे, जो अभी हाल के भारतीय मूल की पीढ़ी के थे और बहुसंख्यक सिंहल आबादी से घिरे हुए थे। भारत की किसी भी सैनिक कार्यवाही के परिणामस्वरूप उनका जीवन असुरक्षित हो जाता। पुनः श्रीलंका में आवामी लीग नेता शेख मुजीब के टक्कर का ऐसा कोई भी नेता नहीं था जो आवाम को भारतीय सैनिक हस्तक्षेप के लिए गतिशील कर सके, प्रत्युत वहाँ तमिल जनता की रहनुमाई करने वाले नौ राजनीतिक दल, आठ अतिवादी संगठन तथा 16 अन्य संगठन क्रियाशील थे। बंगलादेश सैनिक अभियान के पश्चात् भारतीय सेनाएं अतिशीघ्र वहाँ से वापस लौट आयी थी, किन्तु श्रीलंका में इतने तमिल गुटों के कारण भारत का इतना जल्दी वापस लौटना सम्भव नहीं था।

अन्ततः यह कहना अनुचित नहीं कि किसी भी स्थिति में सैनिक कार्यवाही समस्या का स्थाई समाधान नहीं होता, अपितु वह स्थिति को और विकट ही करता है। इसलिए वार्ता वहन के द्वारा बहुपक्षीय सहयोग और सहभागिता से प्रजातांत्रिक मूल्यों की अभिरक्षा करते हुए जो समझौता होता है, वही चिरन्तन और शाश्वत होता है। तमिल नेताओं ने तमिलों की जातीय समस्या के समाधान के लिए 'साइप्रस टाईप' समाधान का प्रस्ताव भी भारत सरकार के समक्ष रखा। इसका तात्पर्य यह था कि तमिल अतिवादी संगठन और टल्फ आदि राजनीतिक दल श्रीलंकाई भूमि पर एक अलग स्वतंत्र तमिल ईलम की उद्घोषणा करते और भारत इस सन्दर्भ में तमिल ईलम को मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें सैनिक सहायता प्रदान करता।

इस प्रकार से तमिल समस्या का समाधान करना अनुचित और अनापेक्षित था, क्योंकि भारत निरन्तर श्रीलंका को यह आश्वासन देते आया था कि वह उसकी क्षेत्रीय एकता, अखण्डता तथा सम्प्रभुता का सम्मन करता है और उसको अक्षुण्ण रखने हेतु प्रतिबद्ध भी है। भारत के इस दृष्टिकोण से श्रीलंका के विभाजन का प्रश्न ही नहीं उठता है और इस वजह से यह बात निर्मूल हो जाती है कि, भारत तमिल ईलम के समर्थन में अनी सेना को उस प्रकार श्रीलंका नहीं भेजेगा जिस प्रकार तुर्की ने साइप्रस में अपनी सेना भेजा। अतः इस परिप्रेक्ष्य में यह कहना अनुचित नहीं कि श्रीलंका की जातीय समस्या का समाधान 'साइप्रस टाईप फार्मूले' से सम्भव नहीं था। इस सम्बन्ध में प्रियदर्शी दत्ता द्वारा दिया गया यह कथन उल्लेखनीय है, ''यह कभी भी एक असम्भव बात नहीं है कि दो या अधिक प्रभुसत्ताएं एक ही द्वीप में अवस्थित हों। कैरेबियन समुद्र में हैती का गणतंत्र हिसपानि ओला द्वीप के एक–तिहाई पश्चिमी भाग में अवस्थित है, जबकि पूर्वी दो–तिहाई भाग डोमिनिकन गणतंत्र के आवेशन में हे। यह एक आत्मविरोधी नीति है कि जबकि श्रीलंका का विभाजन प्रादेशिक अखण्डता का एक पवित्र प्रश्न है, हम तुर्की के प्रधानमंत्री को सम्मानित कर रहे, जिसने अगस्त, 1974 से प्रत्येक अंतर्राष्ट्रीय प्रथा के विरूद्ध द्वीप देश साइप्रस के चालीस प्रतिशत भाग पर अवैधानिक रूप से कब्जा कर रखा है।''

श्रीलंका के जातीय समस्या के निदान हेतु तीसरा सुझाव यह था कि सम्पूर्ण मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र संघ को संदर्भित कर दिया जाए, क्योंकि यह मानवाधिकार के हनन के मामलों से पटा पड़ा था। इस प्रस्ताव का भी भारत सरकार ने विरोध किया। इस विरोध के दो आधार थे – प्रथमतः यह कि भारत इस मुद्दे का अंतर्राष्ट्रीयकरण नहीं करना चाहता था। हालांकि पाकिस्तान और राष्ट्रमण्डल सचिव ने श्रीलंका को सहयोग का संकेत दिया था, किन्तु भारत ने इसे अस्वीकृत कर दिया। द्वितीयतः ऐसे मामलों से निबटने में संयुक्त राष्ट्र संघ की क्षमता हमेशा संदिग्ध रही है, यथा– इस्रायल–फिलिस्तीनी विवाद, साइप्रस विवाद आदि। संयुक्त राष्ट्र संघ को संदर्भित किया गया था, किन्तु ये सारे मामले आज तक ज्यों के त्यों अधर में लटके हुए हैं। साइप्रस मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में ले जाया गया और उसने साइप्रस पर एक आयोग का गठन भै किया तथा वहाँ अपनी शान्ति सेना भी भेजी, जो लगभग तीन दशकों में भी साइप्रस प्रश्न का उत्तर ढूढ़ने में असमर्थ रही है और तुर्की साइप्राऑट ने अपा अलग राज्य बना लिया।

वर्तमान में श्रीलंका में मित्रवत सरकार के चलते यह हो सकता है कि श्रीलंका के उत्तरी हिस्से पर लिट्टे के नियंत्रण को वैधता मिल जाये। साथ यही यह देखकर कि भारत और अमेरिका बल प्रयोग से श्रीलंका का विभाजन नहीं होने देंगे। लिट्टे दिल्ली को भी पुनः वार्ता में शामिल कराकर कोई हल निकालने हेतु आतुर प्रतीत हो रहा है। अप्रैल, 2002 में एक पत्रकार सम्मेलन में प्रभाकरन ने पहली बार श्रीलंका सरकार और दुनिया को यह संकेत दिया कि वे शान्तिपूर्ण राजनैतिक समाधान तलाशने को तैयार हैं। श्रीलंका में भारतीय उच्चायुक्त गोपाल

गाँधी ने इसे 'युद्ध से घायल द्वीप देश के इतिहास में निर्णायक क्षण' करार दिया। कोलम्बो स्थित 'सेन्टर फार पॉलिसी ऑल्टरर्नेटिव्स' में राजनैतिक विश्लेषक और कारकारी निदेशक पाकियासोती सरवन्नामुत्तु ने कहा कि, ''प्रभाकरन ने संकेत दे रहे हैं कि वे राजनीति कि मुख्यधारा में शामिल होने के प्रति गम्भीर हैं, यह पूर्णतया नया परन्तु सकारात्मक चरण है।''

अन्ततः

उपर्युक्त विश्लेषण के आलोक में अन्ततः यह कहा जा सकता है कि श्रीलंका धीरे–धीरे ही सही इस जातीय समस्या के समाधान की ओर अग्रसर है और हमें इसके प्रति निराश भी नहीं होना चाहिए, क्योंकि यदि कोई समस्या है तो उसका समाधान भी है। श्रीलंका सरकार और दुनिया को यह संकेत दिया कि वे शान्तिपूर्ण राजनैतिक समाधान तलाशने को तैयार हैं। श्रीलंका में भारतीय उच्चायुक्त गोपाल गाँधी ने इसे 'युद्ध से घायल द्वीप देश के इतिहास में निर्णायक क्षण' करार दिया।

संदर्भ सूची :

[1] गुप्ता, मदन गोपाल (1992), 'इण्टरनेशनल रिलेशंस सिन्स 1945', चैतन्य पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।

[2] , जैन, बी० एम० (1995), 'प्रमुख देशों की विदेश नीतियां', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण।

[3] खन्ना, वी० एन०, अरोड़ा, लिपाक्षी, (2000), 'भारत की विदेश नीति', विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा० लि० नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण।

[4] पंत, पुष्पेश, जैन, श्रीपाल, (2000), 'भारतीय विदेश नीति : नये आयाम', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2000

[5] जयपालन, एन० (2001), 'फॉरेन पालिसी ऑफ इण्डिया', अटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली।

[6] फाड़िया, डा० बाबू लाल (2002), 'अंतर्राष्ट्रीय राजनीति; साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा।